अजपा-जप

भारतीय आध्यात्मिक साधना में जप का प्राचीन काल से ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इसका विकास समय-समय पर भारत के महान् सन्तों और योगियों ने विभिन्न युगों में अपने अनुभवों से किया है। जप उतना ही प्राचीन है, जितना भारतीय संस्कृति। उपनिषदों तथा अन्य प्राचीन ग्रंथों में इनका विवरण किसी न किसी रूप में प्राप्त होता है। जप कोई भी हो नित्य दोषों को दूर कर चित्त शुद्ध करता है। जप अनेक प्रकार के होते हैं। मुख्य जप इस प्रकार हैं-

नित्य जप: - गुरू मंत्र का प्रतिदिन प्रात: सायं जप करना नित्य जप कहलाता है।

वैखरी जप: - मंत्रों का जोर से उच्चारण करते हुए किया जाने वाला जप वैखरी जप कहलाता है।

उपांशु जप: - मंत्रों को बिना जोर से बोले मुंह के अन्दर ही जप करना उपांशु जप कहलाता है।

मानस जप: - मन से मंत्रों का उच्चारण करना मानस जप कहलाता है।

अजपा जप: - श्वास-प्रश्वास की प्रक्रिया पर अपनी चेतना को केन्द्रित करके किया जाने वाला जप अजपा-जप कहलाता है। यह जप सबसे सरल और उच्च कोटि का माना गया है।

योग में चित्त शुद्धि की बहुत सी साधनाएं हैं। परन्तु हर साधना का प्रभाव अलग-अलग होता है अर्थात कुछ साधनाएं ऐसी हैं जिन्हें साधारण व्यक्ति नहीं सह सकता, इसलिये प्रत्येक को या चाहे जिसको शक्तिपात नहीं कराया जा सकता, क्योकि मनुष्य की प्रकृति तीन प्रकार की होती है-सात्त्विक, राजसिक और तामसिक।

इन तीनों प्रकृतियों के मनुष्यों के लिये आध्यात्मिक क्षेत्र में साधनायें भी अलग-अलग हैं। यदि तामसिक प्रकृति के मनुष्य को सात्विक प्रकृति की साधना करवायी जायेगी या सात्त्विक प्रकृति के मनुष्य को तामसिक प्रकृति की साधनायें करवायी जाय तो वह निश्चित पागल या रोगी हो जायेगा। परतु अजपा एक ऐसी साधना है जो हर प्रकृति के व्यक्ति के लिये उपयुक्त है। यह जप अपने आप में एक पूर्ण साधना है। गोरक्षशतक में महायोगी गुरू गोरक्षनाथ जी ने स्वयं कहा है कि-

हकारेण बर्हिर्याति सकारेण विशेत् पुन:।
हंसहंसेत्यमुं मंत्रं जीवो जपति सर्वदा।।
अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदायिनी।
अस्या: संकल्पमात्रेण सर्वपापै: प्रमुच्यते।
कुण्डलिन्यां समुद्भूता गायत्री प्राणधारिणी।
प्राणविद्या महाविद्या यस्तां वेत्ति स योगवित्।।

अर्थात् प्राण-वायु के हकार की ध्वनि से बाहर जाने पर और सकार की ध्वनि से भीतर आने पर हंस-हंस मंत्र की उत्पत्ति शरीर में 21600 बार होती है। इस हंस मंत्र से सोऽहं शब्द की उत्पत्ति होती है। हंस मंत्र का जप ही अजपा गायत्री है। यह योगियों को मोक्ष प्रदान करती है। इसके संकल्प मात्र से उसके समस्त पाप नष्ट होते हैं। कुण्डलिनी से उत्पन्न यह गायत्री, प्राण-विद्या महाविद्या है। गोरखबानी में महायोगी कहते हैं-

अजपा जपै सुनि मन धरै, पांचो इन्द्री निग्रह करे।
ब्रह्म अगनि में होमै काया, तास महादेव बन्दे पाया।।

अर्थात् जो योग साधक अजपा जप करता है जिसकी चित्तवृत्ति तेलधारावत् अनवरत "ऊँ" "सोऽहं" तथा परमात्मा के इष्ट नाम मंत्र के जप में लगी रहती है जिसका मन ब्रह्मरन्ध्र (शून्यवाद) में रमण करता है, अर्थात ऊर्ध्वमुखी रहता है, जिसके इन्द्रिय समूह चंचलता को छोड़कर स्ववश रहते हैं, जो विनश्वर शरीर को ब्रह्मानुभूति रूपी अग्नि में परिशुद्ध कर देता है उस योगी की वन्दना साक्षात् भगवान शिव करते हैं।

वस्तुत: जब जीव श्वास लेता है तब "स" शब्द के साथ प्राणवायु पेट के अन्दर जाती है और "ह" शब्द के साथ बाहर निकलती है। एक व्यक्ति साधारण स्वरूप स्थिति में स्वभावत: प्रत्येक चौबीस घण्टे के भीतर 21600 बार श्वास लेता है। जैसा कि ब्रह्मविद्योपनिषद् में कहा गया है-

सहस्रमेकमयुतं षट् शतं चैव सर्वदा।
उच्चरन्पतितो हंस: सोऽहमित्यभिधीयते।।

अर्थात् नित्य प्रति इक्कीस हजार छ: सौ की संख्या में "हंस" का जप करने वाला साधक "सोऽहं" रूप हो जाता है।

एक आध्यात्मिक जिज्ञासु के लिये यह आवश्यक है कि वह अपनी प्रत्येक श्वास पर ध्यान दे और उसके महत्त्व को समझे। श्वास प्रक्रिया के यमित-नियमित-दीर्घकालिक-अल्पकालिक करने के लिये किसी बाहरी प्रयत्न पर नहीं बल्कि श्वास प्रक्रिया पर ध्यान देना होता है। जिज्ञासु की कोशिश होनी चाहिए कि उसकी कोई भी श्वास कम से कम जाग्रत अवस्था में व्यर्थ न होने पाये। यही वह सत्य है जिसे प्रत्येक श्वास अव्यक्त रूप में उसके हृदय में ध्वनित करती है। यह अजपा-जप है। महायोगी गोरखनाथ जी कहते हैं कि अजपा की तुलना में कोई भी अन्य विद्या, कोई भी अन्य जप और कोई भी ज्ञान नहीं रखा जा सकता है। जैसा कि एक सन्त ने कहा भी है कि-

ऐसा जाप जपो मन लाई, सोऽहं-सोऽहं सुरता गाई।
छ: सौ सहस इकिसौ जाप, अनहद उपजै आपहि आप।।

अजपा के नियमित अभ्यास से श्वास प्रक्रिया सामान्य होती है जो समाधि अवस्था में पहुँचाने में सहायक होती है।

हमारे इस भौतिक शरीर में दस प्रधान वायु हैं। हृदय देश में प्राण वायु उच्छवास और नि:श्वास का संचालन करती है। यही प्राण वायु हकार की ध्वनि के साथ बाहर तथा सकार की ध्वनि के साथ भीतर आती है। गुदा देश में अपान वायु रेचक, पूरक, कुम्भक की सामर्थ्य से युक्त होती है। नाभिप्रदेश मे समानवायु रहती है। यह जठराग्नि को दीप्ति करती है और भोजन के रूप में ग्रहण किये गये पदार्थों को रसयुक्त करती तथा पचाती है। व्यानवायु शरीर में व्याप्त नाड़ियो का शोधन कर कान्ति और तेज को बढ़ाती है। कंठ में उदान वायु रहती है। इसका कार्य वमन, भाषण और शरीर से प्राण का उत्क्रमण है। प्राणवायु शरीर में व्याप्त रह कर अंग-प्रत्यंग के संचालन में सहायता करती है। कूर्म वायु का कार्य आंखों की पलकों को खोलना और बन्द करना होता है। कृकल वायु का कार्य है डकार उत्पन्न करना तथा मूत्र बढ़ाना। देवदत्त वायु जँभाई लेने में सहायता करती है तथा धनंजयवायु समस्त शरीर में व्याप्त रह कर अव्यक्तनाद उत्पन्न करती है- सिद्धसिद्धान्तपद्धति के अनुसार-

हकार: कीर्तित: सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते।
सूर्याचन्द्रमसोर्योगाद् हठयोगो निगद्यते।।

हमारी दाहिनी नासिका से होकर जाने वाली नाड़ी सूर्य अथवा पिंगला है तथा बायीं नासिका से होकर जाने वाली नाड़ी चन्द्र अथवा इड़ा है। स्वर विज्ञान के अनुसार जब इड़ा पिंगला दोनों नाड़ियां समान रूप से चलती हैं तो वह समय सभी प्रकार की आध्यात्मिक साधना अथवा शुभ कार्य के लिये उत्तम होता है।

अजपा में सर्वप्रथम आने-जाने वाली श्वास के प्रति चैतन्य रहना चाहिए। श्वास सहज नहीं रहेगी। स्वाभाविक श्वास रात्रि में भी रहती है। परन्तु वह अजपा नहीं है। सचेतन मन से आने-जाने वाली श्वास को देखना होगा कि श्वास कहां तक जा रही है। जब श्वास लेते हैं तो वायु नाभि तक जाती है तथा छोड़ते समय नाभि से आती है। इसे करने के लिए किसी आरामदायक आसन में बैठते हैं। अंगो को ढ़ीला छोड़ कर गहरी श्वांस लेते हैं। भीतर जाने वाली श्वास के साथ "सो" और आने वाली श्वास के साथ "ह" जोड़ते हैं। "सो" और "ह" के बीच मानसिक रूप से कोई अन्तर न आये। "ह" के बाद कुछ आराम की स्थिति में आते हैं। पुन: "सो" के साथ श्वास लेते हैं तथा "ह" के साथ छोड़ते हैं। यह "सोऽहं" की एक आवृत्ति है। कुछ समय पश्चात् अजपा बन्द करिये और शून्य में अपनी चेतना को ले जाकर चक्र पर ध्यान करिये, जो भी विचार आये उन्हें हटाकर केवल शून्य का ध्यान रखिये, कुछ देर बाद पुन: अजपा प्रारम्भ कीजिए। श्रीमद्भागवत् में भी अजपा के सन्दर्भ में स्पष्ट कहा गया है-

अपाने जुह्वते प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रूद्ध्या प्राणायामपरायणः।
अपरे नियताहारा: प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषा:।।

अर्थात कुछ साधक प्राण को अपान में मिलाते हैं और अन्य अपान को प्राण में, दूसरे प्राण को प्राण से ही मेल करते

हैं, अन्दर जाने वाली श्वास प्राण है तथा बाहर आने वाली अपान। "सो" प्राण का प्रतिनिधित्व करती है और "ह" अपान का सो को "ह" से जोड़ते हैं जिससे हंसो बनता है। कुछ ऐसे भी साधक हैं जो प्राण का मिलन प्राण से कराते हैं।

अजपा के सतत अभ्यास से आत्मा ब्रह्म की एकता "जीव" और "शिव" की एकता का साथ आध्यात्मिक क्षेत्र में अनुभूत होता है। सभी प्रकार की विषय कामना, घृणा, ईर्ष्या, भय, चिन्ता, अनमनस्कता दूर हो जाती है और हृदय में आत्मपूर्णता की चेतना के आनन्द का अनुभव होता है। अजपा के अभ्यास की उच्चतर स्थिति में श्वास के ऊपर अधिक ध्यान देना आवश्यक नहीं रह जाता। आत्मा और ब्रह्म की आनन्दमयी एकता की भावना में श्वास पर केन्द्रित ध्यान क्रमश: लय हो जाता है। अहं की चेतना समाप्त हो जाती है और केवल एक ज्योति से प्रकाशित अभेदात्मक आनन्दमयी चेतना रह जाती है। इस प्रकार अजपा के अभ्यास से समाधि की प्राप्ति हो जाती है। गोरखबानी में गोरखनाथ जी कहते हैं –

पवनां रे तू जासी कौने बाटी।
जोगी अजपा जपै त्रिवेणी के घाटी।।
चंद गोग टीका करिलै, सूर करिले बाटी।
मूंनी राजा लूगा धोवै, गंग जमुन की घाटी।।

अर्थात हे पवन (प्राण) तुम किस रास्ते जाओगे। त्रिवेणी (त्रिकुटी) में योगी अजपा जप कर रहा है। यह मार्ग बन्द है। चन्द्र और सूर्य नाड़ी से प्राण अवरूद्ध कर सुषुम्णा में प्राण को प्रवाहित कर इस शरीर रूपी कपडे को धोता जा।

अजपा के सतत अभ्यास से साधक उच्चतर स्थिति में पहुँच कर सच्चिदानन्दमय हो जाता है। विभिन्न चरणों में इसका अभ्यास करके साधक वास्तविक शान्ति प्राप्त कर सकता है। अजपा का अभ्यास कुर्सी पर, जमीन पर या किसी आसन (पद्मासन, सिद्धासन या सुखासन) में किया जा सकता है। अजपा के समय ध्यान के केन्द्र पर मस्तिष्क को एकाग्र करना चाहिए। यह ध्यान का केन्द्र आज्ञाचक्र, भ्रूमध्य, अनाहत चक्र या शरीर का कोई अन्य केन्द्र हो सकता है। अजपा में श्वास गहरी तथा आराम दायक होनी चाहिए। विभिन्न चरणों में सफलता पूर्वक अजपा अभ्यास इस प्रकार किया जा सकता है।

प्रथम चरण –

1. किसी आरामदायक आसन में बैठ कर आँखे बन्द करके पूर्णत: शान्ति सुख और आराम का अनुभव कीजिए तथा पेट के भीतर तथा बाहर जाने वाली श्वास पर अपने को केन्द्रित करें।

2. गहरी एवं आरामपूर्वक श्वास लेकर अनुभव करिये कि श्वास नाभि तक जाती है और बाहर जाने वाली श्वास नाभि से आती है।

3. अन्दर जाने वाली श्वास में "सो" और बाहर जाने वाली श्वास में "हं" को जोड़िये इस प्रकार श्वास-प्रश्वास के साथ "सोSहं बनता है।

4. एक आवृत्ति के बाद मानसिक शून्यता की स्थिति में आइए और अपनी चेतना को आज्ञा (भ्रूमध्य) अथवा अनाहतचक्र (हृदयमध्य) पर एकाग्र करिये।

5. पुन: आने जाने वाली श्वास के साथ "सोSहं" का अभ्यास करिए। कुछ दिनों के अभ्यास के बाद पूर्णता प्राप्त होने पर द्वितीय चरण में अभ्यास प्रारम्भ करें।

द्वितीय चरण -

1. प्रथम चरण का अभ्यास करते समय पहले श्वास लेते समय "सो" तथा बाहर निकालते समय "ह" को जोड़ते हैं जो "सोSहं" बनाता है। अब द्वितीय चरण में पहले श्वास "ह" के साथ बाहर निकालते हैं और फिर श्वास सो के साथ लेते हैं जो हंसो बनाता है।

2. एक आवृत्ति के बाद मानिसक शून्यता की स्थिति में आइए और चेतना को आज्ञाचक्र (भ्रूमध्य) अथवा अनाहतचक्र (हृदयमध्य) पर एकाग्र कीजिए।

3. पुन: आने-जाने वाली श्वास के साथ हंसो का अभ्यास करिए। कुछ दिनों तक लगातार अभ्यास से पूर्णता प्राप्त होने पर तृतीय चरण में जाइए।

तृतीय चरण: -

1. किसी स्थिर आसन में सुखपूर्वक बैठकर भीतर तथा बाहर आने वाली श्वास पर चेतना को केन्द्रित कीजिए।

2. अनुभव करिये कि अपनी श्वास नासिका से नाभि तक जा रही है और नाभि से नासिका तक वापस आ रही है।

3. भीतर जाने वाली श्वास के साथ "सो" तथा बाहर आने वाली श्वास के साथ "हं" का ध्यान करिये।

4. लययुक्त "सो" को "हं" की तरंगों से इस तरह जोडें कि सोSहं-हंसो की एक आवृत्ति बने।

5. एक आवृत्ति के बाह्य मानसिक शून्यता की स्थिति में आकर अपनी चेतना को भ्रूमध्य पर केन्द्रित करें।

6. पुन: सोSहं-हंसो की आवृत्ति को दुहरायें।
   तृतीय चरण के पूर्ण अभ्यास के बाद अगले चरण का अभ्यास करें।

चतुर्थ चरण: -

1. किसी स्थिर तथा आरामदायक आसन में बैठकर लम्बी श्वास लेकर चेतना को मूलाधार चक्र में केन्द्रित कीजिए।

2. अनुभव कीजिए कि मूलाधार चक्र में कुण्डलिनी त्रिभुजाकार आकृति के अन्दर मुंह नीचे तथा पूंछ ऊपर किये सुप्त है।

3. अब "सो" के साथ श्वास लीजिए चेतना को "सो" की तरंग के साथ मूलाधार चक्र से स्वाधिष्ठान चक्र, फिर मणिपूरचक्र-अनाहतचक्र-विशुद्धिचक्र तथा अन्त में आज्ञाचक्र में केन्द्रित कीजिए।

4. आज्ञा चक्र में श्वास की चेतना को रोक कर "हं" की मानसिक तरंगों के साथ श्वास छोड़ते हुए मेरुदण्ड होते हुए मूलाधार में चेतना को केन्द्रित करें।

5. मूलाधार चक्र से आज्ञाचक्र तक " सो" के साथ आरोहण करते हैं तथा आज्ञा चक्र से मूलाधार चक्र तक "हं" की तरंग के साथ अवरोहण होता है।

इस चतुर्थ चरण का पूर्ण अभ्यास होने पर आगे के चरण में अभ्यास करें।

पंचम चरण -

1. षण्मुखी मुद्रा अथवा योनि मुद्रा (पद्मासन या वज्रासन में बैठ कर दोनों अंगूठे से दोनों कानों को बन्द करें, दोनों तर्जनी से दोनों आंखों, मध्यमा से दोनों नाक के छिद्रों, दोनों अनामिका के ऊपर के ओठ कनिष्ठा से नीचे ओठ अन्द करने पर) की स्थिति में आइए।

2. "सो" की तरंगों को रीढ़ प्रदेश में मूलाधार चक्र से आज्ञाचक्र तक ले जाइए।

3. आज्ञाचक्र में मानसिक शून्यता की स्थिति में आइए।

4. आज्ञाचक्र में मानसिक शून्यता की स्थिति के बाद "हं" की तरंग के साथ आज्ञा चक्र से मूलाधार में मानसिक शून्यता की स्थिति के बाद "हं" की तरंग के साथ आज्ञा चक्र से मूलाधार चक्र तक चेतना को रीढ़ प्रदेश होते हुए ले जाइए।

5. एक आवृत्ति के बाद श्वास छोड़ कर आराम की स्थिति में आइए।

6. पुन: योनि-मुद्रा की स्थिति में आकर "सो" की तरंग को मूलाधार से आज्ञाचक्र तथा "हं" की तरंग को आज्ञा

चक्र से विभिन्न चक्रों से होते हुए मूलाधार चक्र तक की आवृत्ति का अभ्यास करें।

इस प्रकार अजपा के सतत अभ्यास से साधक आत्मा और ब्रह्म की एकता का, हृदय में आत्म पूर्णता की चेतना के आनन्द का अनुभव करके सच्चिदानन्दमय हो जाता है। अर्थात् मानव-चेतना विकास की उच्चतम स्थिति समाधि में पहुँच जाती है।

अजपा द्वारा रोगोपचार -

1. प्राण, मंत्र और चेतना को संयुक्त करने से अजपा बनता है। यह केवल पूजा और जप का एक तरीका मात्र नहीं है। अजपा केवल साधना नहीं है। अजपा सिर्फ समाधि भी नहीं है। अजपा सिर्फ प्राणायाम भी नहीं वरन् अजपा मनुष्य के तीनों आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक-तापों का शमन करता है तथा विभिन्न तनावों क्रमश: शारीरिक तनावों, मानसिक तनावों तथा भावनात्मक तनावों को दूर कर शान्ति प्रदान करता है।

2. अजपा का सतत अभ्यास कुण्डलिनी-जागरण में सहायक हो सकता है।

3. अजपा अनिद्रा, हृदय-रोग, सिर-दर्द आदि अनेक रोगों में भी रामबाण साबित हुई है। तीन प्रकार के तापों को शमन करने के लिये नाथ सिद्धों ने एक मंत्र दिया जिसे अजपा गायत्री कहते हैं। इसके विभिन्न चक्रों के स्थान, देवता तथा अजपा की संख्या बताई गयी है। इसका अभ्यास करने से साधक सभी प्रकार के तापों का शमन करके परम सुख और शान्ति का अनुभव करता है।